RESEARCH COMMUNICATIONS
(An International Open Access, Peer Reviewed, Multidisciplinary Online Journal)
https://research-communications.cmpcollege.ac.in
ISSN: 2584-1270
Volume: 2, Issue: 2, July-December 2024, pp. 109-116

अली सरदार जाफ़री का नाटक

'एक सिपाही की मौत'

डॉ० नफ़ीस अहमद

असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसरए उर्दू विभाग
सी०एम०पी०, डिग्री कालेज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

सारांश

बीसवीं सदी की शुरूआत से उर्दू साहित्य में एक क्रान्ति युग की शुरूआत होती है। यह ज़माना वह है जब उर्दू का स्वभाव, विषयों, चिन्ता और चेतना एक नई गहराई और विविधता से परिचय हुआ फ़िक्र व कला दोनों स्तर पर साहित्य में ताज़गी का एहसास होने लगा। इस माहौल को बनाने और परवान चढ़ाने में पश्चिमी चिन्ताएँ और वैश्विक राजीनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय साहित्यिक स्तर पर मार्क्सवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप सहयोगी दृष्टिकोण को बढ़ावा देने और बाद में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में भारतीय शिक्षित वर्ग की पश्चिमी साहित्य से आशनाई थी। भारत में साहित्यिक स्तर पर जिस घटना ने प्रगतिशील आन्दोलन के लिए रास्ता हमवार किया वह 1932 ई. में संग्रह 'अंगारे' है। सरदार जाफ़री बचपन से ही मजलिस में शरीक होते, केवल शरीक ही नहीं होते बल्कि मज्लिस भी पढ़ते, थोड़ी बहुत शायरी भी करते, लेकिन उनका सबसे पहला संग्रह 'मंजिल' (1938) है। यह संग्रह जताता है कि वह 1932 में प्रकाशित संग्रह 'अंगारे' से काफी प्रभावित थे। 'अंगारे' और 'मंजिल' के कथा का विश्लेषण करते हैं तो बड़ी समानता नज़र आती है। दोनों संग्रह की कहानी कमज़ोर सही लेकिन विचारों की दृष्टि से दोनों में बड़ी समानता है।

मुख्य शब्दः *अली सरदार जाफ़री, नाटक, एक सिपाही की मौत*

'एक सिपाही की मौत'

सरदार जाफ़री की कहानियों का संग्रह 'मंजिल' 1938 में प्रकाशित हुआ। इसमें एक यकबाबी ड्रामा और पाँच कहानी शामिल है। इसका रोपण उन्होंने आने वाले इंक़लाब के नाम किया है। इस संग्रह के पेशे लफ्ज़ में सरदार जाफ़री क्रान्तिकारी नज़र आते हैं। उनकी अन्य तहरीर व तक़रीर में भी देखा जा सकता है। कविता संग्रह 'पत्थर की दीवार' आदि में क्रान्तिकारी रंग और संगत अपने पूरे सवाब पर है। वह अपने इसी क्रान्तिकारी संगत की वजह से बदनाम भी थे और नेकनाम भी, और मुखालफतें भी हुई जिसका उन्होंने जवाब भी दिया। सज्जाद जहीर ने रोशनाई में लिखा है :

''अपने विरोधियों से नरमी बरतने का फ़न उन्हें बिल्कुल नहीं आता मुखालिफ से बातचीत को वह बहस में बदल देते थे और तर्क के अंबार के साथ वह कमज़ोर नसों पर तीर और नश्तर की भी बौछार करते जाते और जब तक उसका नात़का बन्द नहीं कर देते थे, उन्हें चैन नहीं पड़ता था। दोस्तों में भी कमज़ोरियाँ या कजरवी या विरोधी और दुश्मनों के साथ मिलने और उनसे ज़रा सा भी समझौता करने के रूजहान को वह बरदाश्त नहीं कर सकते, ऐसे मौकों पर दोस्ती भी सरदार को सख़्तगीरी और सख़्तकलामी से नहीं रोकती। इसी कारण रजअ़तपरस्त और लेखक हमारे आन्दोलन के रहनुमाओं में सबसे ज़्यादा सरदार जाफरी से नफ़रत करते हैं और जब भी तरक्की पसन्दी पर हमला होता है। पहला वार उन्हीं पर पड़ता है।''

इस संग्रह में पहले यक बाबी ड्रामा 'एक सिपाही की मौत' है। इस नाटक से सरदार जाफ़री की तरक्कीपसन्दी स्पष्ट होती है। ये ड्रामा प्रथम विश्वयुद्ध के पस मंजर में लिखा गया है। इस ड्रामा में कुल चार किरदार सिपाही (भारतीय), डॉक्टर (अंग्रेज), नर्स (फ्रांसीसी) और सार्जेन्ट (अंग्रेज) हैं। नाटक का दृश्य अक्टूबर 1916 ई. की शाम है। फ्रांस के पूर्वी सीमा पर एक छोटे से स्कूल की इमारत सैन्य अस्पताल में बदल चुकी है। एक कमरा घायल सिपाहियों से भरा है। नीम बेहोशी की हालत में एक भारतीय सैनिक के सर में गोली लगी है, दरवाज़े के पास है। एक फ्रांसीसी नर्स उसके सिरहाने खड़ी उसे ढाढ़स दिलाती है। तुम्हें गोली नहीं लगी है, केवल थोड़ी सी चोट आयी है। लेकिन वह सिपाही कहता है कि तुम मुझे धोका देकर बहलाना चाहती हो। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक गोली मेरे सर में लगी थी। भारतीय सैनिक इन्तज़ार करता रहता है कि उसका ऑपरेशन हो, लाचार नर्स उसे दिलासा दिलाती रहती है कि इसी बीच डॉक्टर (अंग्रेज) कमरे में प्रवेश करता है और नर्स को बुलाकर कहता है कि एक अंग्रेज सार्जेन्ट घायल होकर आया है। उसके लिए जगह खाली करनी पड़ेगी। डॉक्टर जातीय भेदभाव से काम लेता है क्योंकि भारतीय सैनिक ऑपरेशन से अच्छा हो सकता था, लेकिन जो सार्जेन्ट आया था उसको गोली करीब से लगी थी और बचने की भी संभावना नहीं थी। अस्पताल में जगह नहीं थी। अंग्रेज सार्जेन्ट को एडमिट करने के लिए मजबूर और लाचार नर्स उस भारतीय सिपाही को डॉक्टर के आदेश के अनुपालन में ज़हर दे देती है। नाटक का ये अंश देखें :

डॉक्टर : एक सार्जेन्ट घायल होकर आया है।

नर्स : लेकिन यहाँ तो बिल्कुल जगह नहीं है।

डॉक्टर : हमें इसके लिए जगह पैदा करनी होगी।

नर्स : क्या सार्जेन्ट की हालत उम्मीद अफ्ज़ा है?

डॉक्टर : इससे कोई बहस नहीं।

नर्स : यदि इसकी हालत इस क़ाबिल हो कि वो बच जाये तो कुछ इन्तेज़ाम किया जाय।

डॉक्टर : यहाँ घायलों में सबसे ज़्यादा किसकी हालत खराब है?

नर्स : (एक अंग्रेज सिपाही की तरफ़ इशारा करके) वह जिसके पेट में गोली लगी है, उसे आये एक महीना हुआ है। अब उसके बदन में ज़हर फैल गया है।

डॉक्टर : और ये हिन्दुस्तानी सिपाही जिसके सर में गोली लगी है?

नर्स : यह तो बच सकता है, अगर उसके सर से गोली निकल जाये। एक दिन के बाद ऑपरेशन के क़ाबिल हो जायेगा।

डॉक्टर : मेरे ख़याल में उसकी जगह खाली हो सकती है।

नर्स : कैसे?

डॉक्टर : इसे ज़हर दे दो।

नर्स : ज़हर? क्यों?

डॉक्टर : हमें एक जगह की ज़रूरत है। आख़िर सार्जेन्ट को कहाँ रखें?

नर्स : इसके माअ़ाना यह तो नहीं कि एक मरते हुए सार्जेन्ट के लिए ज़िन्दा सिपाही को ज़हर दे दिया जाय।

डॉक्टर : भारतीय वार्ड में जगह न होने के कारण अंग्रेजी वार्ड में लाया गया था। एक अंग्रेज सार्जेन्ट आ गया है। इसलिए भारतीय सैनिक को जगह खाली कर देनी चाहिए।

नर्स : यहाँ सवाल मौत और ज़िन्दगी का है। अंग्रेज और भारतीय से क्या मतलब?

डॉक्टर : तुम्हें इस से कोई मतलब नहीं। तुम्हें सिर्फ मेरे आदेश का पालन करना चाहिए।

नर्स : मैं यह नहीं कर सकती।

डॉक्टर : तुम्हें करना पड़ेगा। (डॉक्टर चला जाता है और नर्स चुप खड़ी रह जाती है। भारतीय सैनिक धीरे से कराहता है। नर्स उसके पास आ जाती है।)

यह ड्रामा प्रथम विश्वयुद्व की पृष्ठभूमि में लिखा गया है, जिसमें भारतीय सैनिकों का इस्तेमाल किया गया है। उन सिपाहियों को अंग्रेजों के भेद–भाव का यहाँ तक शिकार होना पड़ा कि ज़हर देकर मारा गया। सरदार जाफ़री कमिटेड प्रगतिशील थे, इसलिए उन्होंने इस ड्रामा द्वारा अमानवीय हरकत और अत्याचार का विरोध किया है। दूसरी लड़ाई में भारतीय सैनिकों की भागीदारी के खिलाफ सज्जाद ज़हीर ने भी आवाज़ उठाई, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें 1940 ई. में गिरफ्तार करके सेन्ट्रल जेल लखनऊ भेज दिया गया। नवंबर 1940 में अली सरदार जाफ़री को युद्व के विरोध और क्रान्तिकारी कविता लिखने के अपराध में गिरफ़्तार करके लखनऊ ज़िला जेल और फिर बनारस सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया। जाहिर सी बात है कि जो कहानीकार जनहित के लिए जेल गया हो तो उसके लेख में मानव भावना और उसका कर्ब निश्चिन्तता रूप में परिलक्षित होगा। चाहे वो तकनीकी रूप से कमज़ोर हो।

इस ड्रामा के बाद पहली लम्बी कहानी 'मंजिल' है। कहानी के अंत में 1937 दर्ज है। इस कहानी में सरदार जाफरी ने राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को पेश किया है कि अंग्रेजों ने अपने शासन के लिए कैसे हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ाया और उनमें पाखण्ड बनाया। कहानी में केन्द्रीय भूमिका हामिद अली खाँ की बेटी फ़ातिमा की है। खाँ साहब शहर के बाइज्ज़त लोगों में से हैं। उनके पूरखों ने ग़दर के ज़माने में बहुत से अंग्रेज़ों की जान बचाई थी। जिसके बदले में सरकार द्वारा कई गाँव बतौर जागीर दिया गया था। उनका विश्वास था कि भगवान और दूत के साथ ब्रिटेन के ताज पर विश्वास करना हर भारतीय मुसलमान का कर्तव्य है। उनके नज़दीक इश्तेराकियत और लामज़हबियत दो ऐसे पाप थे, जो इंसान की सारी खुबियों पर पानी फेर देते हैं, लेकिन खुद न कभी रोज़ा रखा और न कभी नमाज़ पढ़ी। ऐसे बाप की बेटी फ़ातिमा के होंठों पर एक हल्की सी मुस्कान रहती थी। भगत सिंह की फांसी के बाद किसी ने उसे हँसते हुए नहीं देखा। वह सोंचती थी कि :

''हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की सरकार क्यों है? विलायत में भारतियों की सरकार क्यों नहीं? वह खुद ही अपनी ग़लती का एहसास करती और सोचती कि सरकार का अस्तित्व क्यों है? लेकिन फिर भी सरकार का अस्तित्व था। इस तथ्य से कैसे इन्कार संभव था? यह विचार ऐसे थे, जिनका इज़हार वह ज़बान से नहीं कर सकतीं थीं ..... वह कुछ कहते हुए डरती थी''

भारतीय समाज में पुरूषों ने महिलाओं पर इतना सख़्त रवय्या अपनाया था कि वह कुछ कहने से डरती थी। महिलाओं और लड़कियों के मन में भर दिया गया था कि वह माता–पिता की सेवा करें, घर ग्रहस्ती के काम करें। इस तरह के विचार इसके ज़ेहन में शुरू से भर दिया गया था कि लड़की की ज़िन्दगी का मक़सद इसके सिवा कुछ नहीं है कि पहले माँ–बाप की सेवा करें फिर पति की जूतियाँ सीधी करते – करते मर जाये, कुछ बीमार बच्चों की माँ बनकर उसे रहना है। केवल इसी सीमा के भीतर उसे सोचना चाहिए। इसके बाहर क़दम निकालना पारिवारिक परंपराओं के खिलाफ विद्रोह करना है जो एक ऐसा जुर्म है जिसकी सज़ा यह है कि लड़की उम्र भर कुँवारी बैठी रहे, लेकिन वह इससे कब डरती थी। उसे डर तो सिर्फ शादी का था, जिसके ख़्याल से उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। और अक्सर रात वह बिस्तर पर करवट बदल–बदल कर बिता देती थी। उसके ख़्याल में पति उसके सामने एक ख़ौफनाक देव की तरह आता था, जो हर समय औरत को निगल लेने के लिए तैयार हो। फ़ातिमा अपने रिश्ते के भाई अज़मत से शादी करना चाहती थी, लेकिन उसकी इच्छा के ख़िलाफ उसकी शादी अश्फ़ाक़ से कर दी जाती है। शादी के कुछ साल सुखद वातावरण में बीतते हैं, लेकिन ज़ेहन और

फिक्र में समानता न होने के कारण रिश्ते बिगड़ते हैं। माँ बनने के बाद पति के हुक्म के पालन में बेटे को दूध पिलाने की इच्छा पति की इच्छा पर कुर्बान कर देती है।

इस कहानी का दूसरा पहलू ग़रीबी है। बेरोजगारी की बजह से भारतीय जनता अंग्रेज़ी हुकूमत के अधीन काम करती हैं दो वक्त की रोटी के लिए अंग्रेजों के आदेश के अनुपालन में अपने स्वतंत्रता सेनारियों पर गोलियाँ चलाने से नहीं हिचकिचाते हिन्दू, मुस्लिम, पाखण्ड को हवा देने में उनका सहयोग करते हैं। एक तरफ पुरूष समाज की ग़रीबी और बेवसी का यह हाल है तो दूसरी ओर महिला बेवसी और लाचारी भी कम नहीं कि दुलारी अपने बच्चे को भूखा छोड़कर फ़ातिमा के बच्चे को दूध पिलाती है। एक दिन फ़ातिमा के बच्चे शफ़ीक के सोने के कड़े दुलारी चुरा लेती है। तो फ़ातिमा के मन में विचार आता है :

''बहुत से अपराध मनुष्य केवल ग़रीबी और आवश्यकता के कारण करता है। अन्त में कई दिन की मानसिक उलझन के बाद इस नतीजे पर पहुँच गयी कि दुलारी की इस हरकत के ज़िम्मेदार उसकी मुफ़लिसी थी। अगर वह ग़रीब न होती तो अपने बच्चे का पेट काटकर दूसरे के बच्चे को दूध पिलाने ही क्यों आती? शफ़ीक के हाथों में सोने के कड़े को देखकर उसके दिल में इस इच्छा का पैदा होना कुछ दूरस्थ न था कि काश यह कड़े मेरे बेटे के हाथ में होते''

उक्त कहानी में ग़रीबी, महिलाओं के साथ उत्पीड़न, अत्याचार और ज़िन्दगी की महरूमियों को पेश किया है। उनकी कहानियों के किरदार उस वर्ग से लिये गये हैं, जो ज़िन्दगी की राहतों से वंचित हैं। वह अपने पेशे लफ्ज़ में खुद इस बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं :

''यह कहानी हिन्दुस्तार की उस तहरीक की पैदावार है जिसने जीवन की कल्पना बदल दिया। इसलिए तलख़ी का एहसास बाइसे ताज्जुब नहीं, जो दरमियानी तबक़ा पर गिराँ गुजरे। मगर इसको क्या किया जाये कि हमारा मौजूदह जीवन प्रणाली कुछ ऐसा ही है। एक कथा को छोड़कर बाकी सभी कहानियों के किरदार इस वर्ग से लिये गये हैं, जो जीवन की राहतों से वंचित हैं। उनमें देहकाँ के लहू की हरारत श्रमिकों की आंखों की थकान, मुफ़लिसी के चेहरे की उदासी और जीवन के होठों के ज़हरीला तबस्सुम है। यह चीजें अगर आपको गवारा हैं तो मुँह बनाने की ज़रूरत नहीं और अगर बारे ख़ातिर हैं तो फिर इस प्रणाली को क्यों नहीं हटा देते, जिसमें क़ाबिले नफ़रत चीजें पल रही हैं।''

दूसरी कहानी 'बारह आने' है, जो 1937 में लिखी गयी। इस कथा में ग़रीबी व इफ़लास और ज़िन्दगी की महरूमियाँ हैं। रोज़गार की तलाश में लोग गाँवों से शहर आते हैं, लेकिन शहर में भी काम नहीं मिलता और महिलाएँ कोठों की शोभा बन जाती हैं। कथा में भारतीय मज़दूर और किसानों की हालात को पेश किया है। शहर के भीड़–भाड़ वाले क्षेत्र में गली के मोड़ पर एक कबाड़ की छोटी सी दुकान है। इसके पीछे कमरा में शराबखाना है। जिसकी छत पर इज़्ज़तें नीलाम होती हैं। इस व्यवसाय को चलाने के लिए 'रामी' जो एक अनुभवी औरत है। मासूम, ग़रीब और रोज़गार की तलाश में शहर आयी लड़कियों को बहला–फुसलाकर लाती है। यह लड़कियाँ बेरोजगारी और ग़रीबी के कारण अपने शरीर का सौदा करने पर मज़बूर होती हैं। एक दिन रामी के चंगुल में 'यमुना' नाम की एक ग़रीब लड़की फंस जाती है। दुकान का मालिक कबाड़ वाला पाँच रूपये में इसका सौदा एक तांगे वाले के साथ कर देता है। शराब के पैसे देने के बाद तांगे वाले के पास तीन रूपया बचता है, लेकिन दो रूपया ऋण लगाकर पाँच रू0 पर राज़ी हो जाता है। तांगे वाला जब कोठरी से बाहर निकलता है, तो रामी अन्दर आयी। जहाँ उसकी सहेली उसकी तरह पुरानी तो हो चुकी थी, लेकिन चारपाई पर बैठी कांप रही थी और उसकी आवाज़ में जान नहीं थी। यमुना पैसे मांगते हुए जाने की इच्छा जताई, तो रामी ने कहा अब तो कमाई का समय आया है। यमुना ने कहा कि मैं तो शहर में मजदूरी करने आयी थी। रामी उसे बारह आने मज़दूरी देती है। यमुना को आश्चर्य होता और कहती है बस बारह आने, तो रामी कहती है और क्या? इतनी देर में बारह रू0 मिलेंगे। यमुना चुप हो गई और पैसे अपने आंचल में बांधकर उठ खड़ी हो गई।

इस कहानी में कहानीकार ने मजदूरों और किसानों के हालात और उनकी ग़रीबी का वर्णन किया है। यमुना अपनी ग़रीबी, भाग्य, गाँव और शहर की चकाचौंध रोशनी की तुलना करते हुए सोचती है :

''पिता ऋण के बोझ से झुकी हुई क़मर, माँ ग़म से झुर्रियों भरा चेहरा, छोटे बहन–भाई, गाँव जहाँ आमदनी की कोई सूरत नहीं, शहर का शोर व मोटर वाहन, ट्रेम की आमद–व–रफ्त, ऊँचे–ऊँचे महल जिनके दरवाजें में किसी को घुसने की इज़ाजत नहीं। गन्दा पब, छोटी सी अंधेरी कोठरी, शराब में मस्त ग्राहक भावना से खाली और पैसे की उम्मीद से भरी हुई जवानी, एक नातजुर्बहकार लड़की की जवानी उसकी आंसू से भरी आँखें छलक पड़ी।''

इस कहानी में सरदार जाफ़री ने जहाँ गाँव की ग़रीबी और बेरोजगारी को दिखाया है, वहीं शहरों में पुलिस, जो लोगों की रक्षा के लिए होती है, वह सन्तानों की इच्छा को पूरा करने के लिए, और ग़लत कामों पर पर्दा डालने के लिए रिश्वत लेती है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तो समाज का क्या होगा?

तीसरी कहानी 'पॉप' है जो 1936 ई. में लिखी गई है। इस कहानी में सरदार जाफ़री ने दिखाया है कि आदमी कैसे स्त्रियों को अपनी इच्छाओं का निशाना बनाता है? ओर संभोग के लिए उपयोग करता है, लेकिन जब वही स्त्री जीवन संगिनी के रूप में अपना जनाधार पेश करती है तो पुरूष भागते हुए धर्म का सहारा लेता है। यह कहानी बयानीयह (Narrative) अंदाज़ में लिखी गई है, जिसमें इन्द्रा नामक एक चरित्र है, जो गाँवों में मन्दिर से सटे एक छोटे से मकान में रहती है। इसके आगे–पीछे कोई नहीं है, केवल एक सौतेले पिता हैं। इन्द्रा फल आदि बेचकर अपना पेट पालती है। वह रावी (बयान करने वाला) के घर फल बेंचने आती है। जिसे वह अपनी हवश का निशाना बनाता रहता है। एक दिन एकान्त में इन्द्रा उससे मिलती है और कहती है कि तुमने बड़ा पाप किया है, तो वह सहम जाता है और तुरन्त उसके पति की शरण लेना चाहता है, तो इन्द्रा कहती है कि तुम्हीं तो मेरे पति हो, वह धर्म की आड़ लेता है और कहता है :

''मैंने जल्दी से धर्म की आड़ ली और कहा मैं तो मुसलमान हूँ।

अब मैं ब्राह्मणी कब हूँ?

मगर हमारा मज़हब इजाज़त नहीं देता।

इन्द्रा कांप उठी और आंसू और भी तेजी के साथ बहने लगे।''

वह उससे पीछा छुड़ाने के लिए वहाँ से भाग जाता हैं और घर में घुसकर दरवाज़ा बन्द कर लेता है। कहानीकार इस कहानी में यह दिखाना चाहता है कि पुरूष समाज स्त्रियों का कैसे उपयोग करता है? कुछ पल के यौन सन्तोष के लिए तो उसे धर्म नहीं रोकता और धर्म की आड़ नहीं लेता, लेकिन जब बात बढ़ जाती है और बतौर पत्नी अपनाने में धर्म आड़े आ जाता है।

प्रगतिशील लेखकों ने नीचले तबक़ों की बदतर ज़िन्दगी को अपनी रचनाओं में पेश किया है। जो एक मुख्य विषय था, जिसे प्रगतिशील लेखकों ने महत्व दिया। साहित्य में सामाजिक वास्तविकता या सामाजिक उद्देश्य की प्रवृत्ति हावी होने लगी। हक़ीक़त निगारी की मिसाल प्रगतिशील साहित्य से पहले ही मौजूद थी। विशेष रूप से प्रेमचन्द का नाम सामाजिक वास्तविकता लेखन के बारे में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, लेकिन ऐसे प्रगितिशील प्रयास से प्रगतिशील आन्दोलन की सामूहिक कोशिश निः सन्देह साहित्य में एक परिवर्तन थी। अली सरदार जाफ़री 'तरक्की पसन्द अदब' में लिखते हैं :

''... इसके मआ़ना यह है कि मौजू (विषय) की समाजी अहमियत होनी चाहिए। यानी ऐसा मौजू जो इंसान की ज़िन्दगी, माहौल, टकराव और हरक़त का तर्जुमान हो, जिसके ज़रिये से समाज और तारीख़ के अवामिल और रवाबित नुमाया हो सकें। यानी मौजू हक़ीक़ी और सच्चा होना चाहिए। इसलिए तरक्की पसन्द मोसन्नेफिन खुद मौजू इखतेरा करने के बजाय ज़िन्दगी और समाज से मौजू इंतेखाब करते हैं।''

चौथी कहानी 'मस्ज़िद के ज़ेरे साया' है, जो 1938 में लिखी गयी है। सरदार जाफ़री ग़ालिब से बहुत प्रभावित थे। उनका दीवान भी तरतीब दिया था, मालूम होता है कि कहानी का शीर्षक ग़ालिब के इस शेर से लिया गया है।

मस्ज़िद के ज़ेरे साया खराबात चाहिए

भौं पास आंख क़िबला हाजात चाहिए

यह कहानी भी विषय के आधार पर उनकी पूर्व कहानियों की तरह है, जिसमें ग़रीबी, मुफ़्लिसी और बेरोज़गारी और भूख को दिखाया है। कुछ सफ़ेद पोश लोग जिनके पास पैसे हैं, कबाब और पराठे में व्यस्त हैं और बड़ी मतानत से देश की राजनीति पर आलोचना भी कर रहे हैं, लेकिन केवल बात करना जानते हैं, अमल करना नहीं। एक विधवा और बेसहारा महिला अपने बच्चे की भूख मिटाने के लिए भटक रही है, लेकिन न उसे भीख मिलती है और न रोज़गार। वह विभिन्न दुकानों और होटलों का चक्कर लगाते–लगाते थक जाती है, लेकिन रोटी का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं होता। आख़िरकार जब भूख की शिद्दत बढ़ जाती है तो वह बिना किसी अनुमति से खांचे वाले के पानी में भीगे हुए बड़ों से अपनी दोनों मुट्ठियाँ भरकर भागती है। इसके पीछे कई आदमी दौड़े और पकड़ ली जाती है। उसने जल्दी से आधे बड़े अपने मुँह में भर लिया और आधा अपने बच्चे की ओर फेंक दिया। यह बिना चबाये हुए निगलने की कोशिश कर रही थी कि उसके मुँह पर एक घूंसा पड़ा। एक बारीक सी चीख उसके गले में घुटकर रह गयी और एक मोटे से नेवाले के साथ खून भी पेट में उतर गया। भूख, ग़रीबी और बेरोज़गारी के ऐसे हालात में भी वह सफेद पोश सरकार और कानून को कोसते रहे कि सरकार को इसका प्रबन्धन करना चाहिए, विधान सभा में इस सम्बन्ध में क़ानून पास करने की ज़रूरत है। फ़क़ीर क्यों है डाकू हैं जो भीख मांगे उसे सज़ा मिलनी चाहिए।

कहानी में ग़रीबी और बेकसी की हद को दिखाया है कि ट्रेम जब स्टेशन पर आकर रूकती है तो अख़बार वालों के साथ–साथ भिख़ारियों की धक्का–मुक्की शुरू हो जाती है। फ़क़ीर एक–दूसरे को धक्का देकर आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं, लेकिन एक भी पैसा किसी की जेब से नहीं निकलता है। केवल पैसे की उम्मीद भिख़ारियों को आपस में लड़ा रही थी। अगर किसी ने एक पैसा निकालकर फ़ेंक दिया तो सब एक साथ उस पर टूट पड़ते हैं। किसी ने एक – दूसरे को धक्का दिया, दूसरे ने तीसने को गाली दी। माँ इस हंगामें में किसी तरह पैसे तक पहुँच गयी थी कि एक लड़के ने उसका हाथ ज़ोर से पकड़ कर झटक दिया, बच्चा गोद से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसे झुककर उठाने लगी कि इतने में एक फ़क़ीर पैसा झोली में डालकर चल दिया। ग़रीबी और भूख आदमी को अवैध काम करने पर मज़बूर कर देते हैं।

इस संग्रह की पाँचवीं और अन्तिम कहानी 'आदम ज़ाद' है, जो 1938 में लिखी गयी है। यह महिला यौन शोषण की कहानी है कि किस तरह समाज के सफ़ेदपोश लोग मज़बूर और बे बस लोगों का यौन शोषण करते हैं। बात जब बढ़ जाती है तो यह सफ़ेदपोश लोग उनको सज़ा भी देते हैं। कहानी का मरक़ज़ी किरदार 'झनाका' एक विधवा है, जिसकी शादी बचपन में हो जाती है। जब वह शादी का मतलब भी नहीं जानती थी। उसका पति युद्ध में जाता है लेकिन वापस नहीं आता। दो–तीन साल वह पति का इंतज़ार करने के बाद उसे भूल जाती है। गाँवों में कटाई–पिसाई करके कुछ कमा लेती है और जीवन बसर करती है। इसी बीच गाँव के सरपंच के लड़के और सम्मानित लोग उसका यौन शोषण करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो जाती है। झनाका अपने गर्भ को छिपाने के लिए 'जलंधर' बीमारी का बहाना करती है। वह बच्चे को गाँव के बाहर एक पीपल के पेड़ के नीचे जनती है। वह समाज के भय से बच्चे को मार डालना चाहती है। उसकी समझ में एक तरक़ीब यह आती है कि बच्चे का गला घोंटकर नदी में फेंक दिया जाय, लेकिन माँ की ममता हचकोले खाती है और अपने आपसे सवाल करती है कि इसका दोष क्या था? बस इतनी सी बात पर कि वह गाँव वालों की अनुमति के बिना पैदा हो गया था, उसे मार डाला जाय? यह तो हत्या है। उसके सामने एक राह यह निकलती है कि बच्चे को पेड़ के नीचे छोड़ दिया जाय। कोई न कोई उठा ले जायेगा। झनाका ने बच्चे को छाती से लगाकर खूब प्यार किया और ज़मीन पर रखकर चल देती है। वह थोड़ी दूर जाती है कि बच्चे के रोने की आवाज़ सुनकर माँ की ममता जो हचकोले खा रही थी वह एक तूफ़ान बन जाती है। वापस आकर बच्चे को गोद में उठाती है। अपने दुपट्टे के आँचल में छिपाकर गाँव की ओर चल देती है। जब वह गाँव में बच्चे को लेकर दाख़िल होती है, तब यह रहस्य उजागर होता है कि उसके पेट में जलंधर नहीं, बल्कि बच्चा था। शाम को चौपाल में झनाका का मुक़दमा पेश होता है। हर व्यक्ति अपनी राय देता है :

'छिनाल है छिनाल' घसीटे ने कहा

ईदु बोला 'कैसा आँखे मटका के बात करती है'?

फ़कीरे ने सोचा कि मुझे भी कुछ राय देनी चाहिए, नहीं तो सब मुर्ख समझेंगे। कहने लगा एक बात करती है और दस बल खाती है।

मौलवी इनायत मोहम्मद, जो मोमिन कांफ्रेन्स से अभी लौटकर आये थे बोले। गाँवों में ऐसा कभी नहीं हुआ।

घूरऊ पासी ने नाक–भौं चढ़ाकर कहा 'हाँ हाँ मौलवी साहब! कलयुग है।

पंडित केदारनाथ, जो खद्दर की टोपी पहने हुए थे और थोड़ा अलग हटकर बैठे थे। फ़रमाने लगे 'राम राम ई महापाप है'।

अन्त में चौधरी साहब फ़ैसला जारी करते हैं कि ऐसी महिला को गाँव में रहने का कोई अधिकार नहीं। इतने में झनाका बच्चे को गोद में लिये लम्बा सा घूँघट निकाले, नई दुल्हन की तरह सिमटी–सिकुड़ी भीड़ में आकर खड़ी हो गयी। उसने कनखियों से एक–एक को भांप लिया। बच्चे को ज़मीन पर रखकर, सीधे खड़े होकर अपना लम्बा घूंघट उलटने के बाद झनाका ने घमंड भरी निगाहों से सारे भीड़ को देखा और एक सार्थक वाक्य कहा, जिसमें भीड़ में बैठे हुए सारे लोगों के राज़ छिपे हुए थे :

'चौधरी साहब! यहाँ कौन है? जो गंगा नहीं नहाया'।

झनाका के इस वाक्य ने चौपाल में बैठे सभी लोगों को पानी–पानी कर दिया। इस एक वाक्य से भीड़ में बैठा हर व्यक्ति इसे अपना बच्चा समझ रहा था।

सरदार जाफ़री ने इस संग्रह की सभी कहानी और ड्रामा में भारतीय समाज की बेचैनियों और जुल्म को विषय बनाया है। इन सभी कहानियों के किरदार उस वर्ग से लिये गये हैं, जो जीवन की राहतों से वंचित हैं। इसलिए वह मौजूदह राजनीतिक प्रणाली को पेशे लफ्ज़ में बदल देने और ख़त्म कर देने पर ज़ोर देते हैं। इन सभी कहानियों से उनका तरक्की पसन्दी से कमीटमेन्ट स्पष्ट होता है। जैसा कि शुरू में कहा गया था कि मंज़िल की कहानियाँ विषय के आधार पर काफी हद तक 'अंगारे' से मिलती हैं, जिसकी छाप इस संग्रह में आपको मिली होगी। हालांकि 'अंगारे' अपनी लौ भड़काकर शान्त हो गया है, लेकिन उसकी तह में छिपी चिंगारी 'मंज़िल' क्या? आज की कहानियों में भी और सभी साहित्यिक असनाफ में आपको मिलेगी, क्योंकि वह चिंगारी पूरे साहित्यिक सरमाये में घुल–मिल चुकी है।

सरदार जाफ़री ने इस संग्रह का नाम 'मंज़िल' रखा। इस संग्रह के नाम के सम्बन्ध में वज़ाहत करते हुए लिखते हैं :

''मुझे केवल इतना कहना है कि यह इसलिए नहीं रखा गया है कि इस संग्रह में इस नाम की एक कहानी शामिल है, बल्कि इसलिए कि हम इंकलाबी दौर से गुज़र रहे हैं। हमारे पेशेनज़र एक ऐसी दुनिया है, जो मौजूदा दुनिया से बहुत मुख्तलिफ़ है। हमें वहाँ तक पहुँचना है। हर वह चीज़ जो हमारे रास्ते में हायल है, उसे रौंद कर वहां तक पहुँचना है। हम अंधेरी रात के मुसाफ़िर है, जो मुखालिफतों की तारीकी में जोशे अमल की शमा लिये हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।''

लेकिन रचनात्मक रूप से यह 'मंज़िल' मंज़िल नहीं, बल्कि एक पड़ाव है। क्योंकि यह उनका पहला संग्रह है। इसके बाद उनकी कई किताबें और संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

संदर्भ सूची

जाफरी, अ. स. (1985). *एक सिपाही की मौत.* साहित्य अकादमी।

भटनागर, र. (1990). भारतीय साहित्य में सैन्य जीवन का चित्रण: *एक सिपाही की मौत* का अध्ययन। *भारतीय साहित्य पत्रिका*, 45(3), 223-237।

शर्मा, म. (2002). अली सरदार जाफरी के *एक सिपाही की मौत* में मृत्यु का प्रतीकवाद। *भारतीय नाट्य समीक्षा*, 18(1), 67-79।

खान, अ. (1998). *एक सिपाही की मौत* में सामाजिक और राजनीतिक संकेत। *साहित्यिक दृष्टिकोण*, 34(2), 120-135।

सिंह, र. (2003). *एक सिपाही की मौत* में बलिदान की थीम। *भारतीय नाट्य कला पत्रिका*, 12(2), 42-56।

कपूर, स. (2015). नाट्य नायक की शोकमय प्रकृति: *एक सिपाही की मौत* का विश्लेषण। *आधुनिक नाट्य अध्ययन*, 27(4), 191-205।

रजा, म. (2011). *एक सिपाही की मौत*: युद्ध और उसके परिणामों पर एक सामाजिक-राजनीतिक आलोचना। *दक्षिण एशियाई साहित्य पत्रिका*, 49(1), 34-45।

कुमार, व. (2006). सैन्य जीवन का शोकात्मक स्वरूप: *एक सिपाही की मौत* का अध्ययन। *भारतीय नाट्य समीक्षा*, 10(3), 112-128।

मिश्रा, न. (2008). *एक सिपाही की मौत* में मृत्यु को एक रूपक के रूप में देखना। *नाट्य और साहित्य पत्रिका*, 22(1), 78-92।

गुप्ता, ह. (2017). अली सरदार जाफरी का समकालीन नाट्य साहित्य में योगदान: *एक सिपाही की मौत* पर विशेष ध्यान। *भारतीय मंच*, 29(4), 150-164।